श्रीमद्भगवद्गीता में मानसिक स्वास्थ्य की संकल्पना : एक गवेषणात्मक अनुशीलन

प्रो. (डॉ.) जितेंद्र कुमार शर्मा

सारांश -

प्रस्तुत आलेख में श्रीमद्भगवद्गीता में मानसिक स्वास्थ्य की संकल्पना पर गवेषणात्मक दृष्टि डाली गई है। आलेख के चरण में प्रथम चरण में भगवद्गीता के अनुसार मन के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए बताया गया है कि मन बड़ा ही चंचल है। यह शरीर को क्षुब्ध और इंद्रियों को विक्षिप्त यानी परवश कर देता है। कामातुर अशांत मन ही समस्त दुःखों का मूल कारण है। भोगवासनाओं की निरंतर बहती हुई आंधी मनुष्य के विवेक पर पर्दा डाल देती है। काम, क्रोध, लोभ -मोह के वशीभूत होकर कर्म करने से मन में दुर्बलता आती है परिणाम स्वरुप मन में चिंता और मनस्ताप पैदा होता है। यदि यह स्थिति लंबे समय तक बनी रही तो शरीर नानाविध बीमारियों का घर बन जाता है। भोगेच्छाओं पर नियंत्रण स्थापित करना मानसिक स्वास्थ्य की प्राथमिक और महत्वपूर्ण शर्त है। सचेतनता (विवेकशीलता) और अभ्यास के कठोर अनुशासन से व्यक्ति अपने विचारों और भावनाओं पर नियंत्रण स्थापित कर सकता है। 'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु' की साधना समस्त आगत और अनागत उपद्रवों और विपत्तियों तथा कष्टों के निवारण का उत्सस्थान है। मनुष्य के सच्चे स्वरूप पर भी चिंतन आवश्यक है। भोग-वासनाओं की सिद्धि जीवन का एक पक्ष अवश्य है परंतु जीवन इससे भी आगे है। हम केवल अपने भौतिक शरीर ही नहीं है बल्कि इन शरीरों में अस्थाई रूप से निवास करने वाली दिव्य आत्माएं हैं। इस तरह का स्वस्थ चिंतन होने से व्यक्ति अनुपलब्धियों जन्य मनस्ताप और कुंठा से मुक्त हो जाता है।

कुंजी शब्द - श्रीमद्भगवद्गीता, योग, अध्यात्म, मानसिक स्वास्थ्य, इंद्रिय, निःश्रेयस, आत्यंतिक दुःखनिवृत्ति, प्रवृत्त मानस, प्रबुद्ध मानस, अध्यात्म मानस, भौतिक शरीर, बायप्रोडक्ट, प्रतिफल, विषयानुराग, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, युक्ताहार-विहार, सात्विक एवं संतुलित भोजन, सात्विक दिनचर्या, बौद्ध संदेश।

- **प्रस्तावना -**

सम्प्रति संपूर्ण विश्व भयंकर त्रासदी, बरबादी और दुःख के दौर से गुजर रहा है। 'सर्वं दुःखं' का बौद्ध संदेश मानव जीवन में चतुर्दिक प्रतिपल प्रतिपग अमानिशाजन्य अंधकार की भांति गहनतर होता चला जा रहा है। सर्वशास्त्र मयी भवद्गीता न केवल वेद तत्त्वार्थ निचोड़ है बल्कि इसमें मानव जीवन की सभी समस्याओं और दुःखों का आत्यंतिक समाधान भी है। मानव जीवन की कोई भी ऐसी समस्या नहीं है जिसका सर्वकालिक समाधान इस आर्ष ग्रंथ में न हो। प्रतिपाद्य के संदर्भ में यदि हम विचार करें तो हम यह कह सकते हैं कि गीता की रचना जिस कालखंड में की गई थी उस समय आज जैसी मानसिक स्वास्थ्य जैसी समस्या नहीं थी।तथापि इस आर्षग्रन्थ में मानसिक रोगों से निवारण का बीजमंत्र विद्यमान है। सिद्ध- साधकों की बात यदि हम छोड़ दे तो आज लगभग हर व्यक्ति मनःरोगी है या मन की दुर्बलता से ग्रस्त है। प्रस्तुत आलेख में श्रीमद्भगवद्गीता में मानसिक स्वास्थ्य की संकल्पना पर गवेषणात्मक दृष्टि डाली गई है। आलेख के चरण में प्रथम चरण में भगवद्गीता के अनुसार मन के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए बताया गया है कि मन बड़ा ही चंचल है। यह शरीर को क्षुब्ध और इंद्रियों को विक्षिप्त यानी परवश कर देता है। कामातुर अशांत मन ही समस्त दुःखों का मूल कारण है। भोगवासनाओं की निरंतर बहती हुई आंधी मनुष्य के विवेक पर पर्दा डाल देती है। काम, क्रोध, लोभ -मोह के वशीभूत होकर कर्म करने से मन में दुर्बलता आती है परिणाम स्वरुप मन में चिंता और मनस्ताप पैदा होता है। यदि यह स्थिति लंबे समय तक बनी रही तो शरीर नानाविध बीमारियों का घर बन जाता है। भोगेच्छाओं पर नियंत्रण स्थापित करना मानसिक स्वास्थ्य की प्राथमिक और महत्वपूर्ण शर्त है। सचेतनता (विवेकशीलता) और अभ्यास के कठोर अनुशासन से व्यक्ति अपने विचारों और भावनाओं पर नियंत्रण स्थापित कर सकता है। 'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु' की साधना समस्त आगत और अनागत उपद्रवों और विपत्तियों तथा कष्टों के निवारण का उत्सस्थान है। मनुष्य के सच्चे स्वरूप पर भी चिंतन आवश्यक है। भोग-वासनाओं की सिद्धि जीवन का एक पक्ष अवश्य है परंतु जीवन इससे भी आगे है। हम केवल अपने भौतिक शरीर ही नहीं है बल्कि इन शरीरों में अस्थाई रूप से निवास करने वाली दिव्य आत्माएं हैं। इस तरह का स्वस्थ चिंतन होने से व्यक्ति अनुपलब्धियों जन्य मनस्ताप और कुंठा से मुक्त हो जाता है। युक्ताहार विहार मानसिक स्वास्थ्य की प्रागपेक्षा है। उचित और संतुलित आहार मन की एकाग्रता के लिए आवश्यक है। जगत और जागतिक पदार्थों के प्रति ममता और आसक्ति का भाव ही दुःखों का मूल कारण है जो मन को रूग्ण और अस्वस्थ कर देता है। अधिकाधिक प्राप्ति की मनःकामना मन को निरंतर सालती रहती है और सहज प्राप्त वर्तमान के सुख से भी वंचित कर देती है। अज्ञानता वश हम स्वयं को प्रत्येक कार्य का कर्ता मान बैठते हैं परिणामतः तथा सफलता मिलने पर अहं और असफलता मिलने पर

अवसाद,हताशा और कुंठा के शिकार हो जाते हैं। कर्म और कर्मफल के इस तात्त्विक स्वरूप को समझना मानसिक स्वास्थ्य के लिए नितांत आवश्यक है। कैरियर का ठीक-ठीक चयन न कर पाना आज के युवा मानस की सबसे बड़ी समस्या और असफलता का कारण है। हमें अपने का चुनाव भेड़ चाल -अंधेनैव नियमानाः यथान्धा: की भांति न कर अपने गुण और स्वभाव के अनुसार करना चाहिए। स्वधर्मानुरूप कैरियर के निश्चय द्वारा ही हम अपनी अन्तस् ऊर्जा को सकारात्मक दिशा दे पाएंगे। इसके साथ ही मन को क्षुद्र दुर्बलताओं से ऊंचा उठाकर उसे विकसित भी करना है। दिव्य मानस के स्तर पर पहुंचना है। अहंकार शून्य शुभ संकल्पयुक्त प्रभुपदाम्बुजों में समर्पित मन ही विकसित मन /परिमार्जित मन/ परिवर्तित मन कहलाता है। इसी विकसित मन से कार्य करने की जरूरत है।

- **योगविद्या एवं स्वास्थ्य -**

सम्पूर्ण मानव सभ्यता का इतिहास मनुष्य के आत्यंतिक दुःख निवृत्ति और निःश्रेयस की प्राप्ति हेतु किए गए अनुसंधान और प्रयास का इतिवृत्त है। इस हेतु विभिन्न कालखण्डों में ज्ञान की विविध धाराएं और प्रविधियों की खोज की गई। योगविद्या आर्यावर्त की आर्ष परंपरा द्वारा विश्व सभ्यता को दिया गया वह प्रथम और प्राचीनतम उपहार है जो शरीर और मन को स्वस्थ रखते हुए आत्यन्तिक दुःख निवृत्ति के साथ वैयक्तिक चेतना का परात्पर चेतना के साथ तादात्म्य सुनिश्चित करती है। मोक्ष मार्ग को प्रशस्त करती है। जहां तक भगवद्गीता में प्रतिपाद्य विषय की संकल्पना का प्रश्न है इस संबंध में इतना ही कहा जा सकता है कि सर्वशास्त्रमयी गीता वेद- तत्वार्थ का निचोड़ है। वैयक्तिक जीवन हो या पारिवारिक , सामाजिक जीवन हो या वैश्विक, चराचर जगत की कोई ऐसी समस्या नहीं है जिसका शाश्वत समाधान भगवद्गीता में न हो तभी तो भगवान नारायण घोषणा करते हैं "गीता में हृदयम पार्थ" गीता में मानसिक स्वास्थ्य की संकल्पना पर गवेषणात्मक दृष्टि डाली जाए इसके पूर्व स्वास्थ्य की अवधारणा एवं मन के स्वरूप पर संक्षेप में चर्चा कर लेना समीचीन होगा। विश्व स्वास्थ्य संगठन(W.H.O.) मानसिक स्वास्थ्य को परिभाषित करते हुए कहता है- "यह सलामती की एक स्थिति है जिसमें किसी व्यक्ति को अपनी क्षमताओं का एहसास रहता है, वह जीवन के सामान्य तनावों का सामना कर सकता है, लाभकारी और उपयोगी रूप से कम कर सकता है। और अपने समाज के प्रति योगदान करने में सक्षम होता है"। वैसे तो स्वास्थ्य को शारीरिक और मानसिक रूप में विभक्त ही नहीं किया जा सकता है क्योंकि दोनों युगपद अन्तर्सम्बन्धित है। जहां एक तरफ कहा जाता है 'स्वस्थे एव शरीरे चित्तं स्वस्थं वसति' वही योगवाशिष्ठकार स्पष्ट घोषणा करते हैं "मनः एवं करणानां बन्धनमोक्षयोः"। मन के हारे हार है मन के जीते जीत। इसी कारण आजकल स्वास्थ्य के लिए समग्र स्वास्थ्य शब्द का प्रयोग किया जाता है। समग्र स्वास्थ्य वह है जिसमें हमारी समस्त शारीरिक और मानसिक

शक्तियों एवं क्षमताओं का पूर्ण विकास हो। यह समग्र स्वास्थ्य व्यक्तित्व विकास की अनिवार्य प्राथमिक शर्त है।

- **मानसिक स्वास्थ्य -**

मानसिक स्वास्थ्य के संबंध में मानसिक विकार व्यक्ति के स्वास्थ्य संबंधी व्यवहार, फैसले, नियमित व्यायाम, पर्याप्त नींद और सुरक्षित यौन व्यवहार आदि को प्रभावित करता है और शारीरिक रोगों के खतरे को बढ़ाता है। मानसिक अस्वस्थता के कारण ही व्यक्ति को बेरोजगार, भग्न एवं बिखरे हुए परिवार, गरीबी, नशीले पदार्थों का सेवन और संबंधित अपराध का सहभागी बनना पड़ता है। मानसिक अस्वस्थता से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण तथ्य निम्नानुसार है- इंटरनेट से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार सामान्य लोगों के मुकाबले मानसिक रोगियों की मौत 10से 20 साल पहले हो जाती है। हर साल 8 लाख लोग मानसिक रोग से तंग आकर आत्महत्या कर लेते हैं। दुनिया में हर नौ में से एक व्यक्ति मानसिक बीमारी से पीड़ित है। 26 करोड़ लोग डिप्रेशन के शिकार, 14 वर्ष की उम्र से मेंटल डिसऑर्डर से जूझने लगते हैं। डिप्रेशन और एंजाइटी के कारण वर्ल्ड इकॉनमी को हर साल 75 लाख करोड़ का नुकसान होता है। मन के स्वरूप पर चिंतन करने के पूर्व मानसिक बीमारियों के प्रमुख कारणों पर संक्षेप में विचार कर लेना उचित होगा।

मानसिक स्वास्थ्य में हमारे भावनात्मक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक कल्याण शामिल हैं। यह प्रभावित करता है कि हम कैसे सोचते हैं, महसूस करते हैं और कार्य करते हैं। मानसिक बीमारियों के प्रमुख कारण निम्नवत है।

- **जैविक कारण** Biological Factorजैसे कि जीन या मानसिक रसायन
- मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं का पारिवारिक इतिहास Family history of mental health problems
- जीवन के अनुभव जैसे आघात या तकलीफ life experiences such as trauma
- जीवन में अवसाद रूपी वातावरण के कारण Depressive Environment
- बचपन का आघात लगने के कारण Childhood trauma
- तनावपूर्ण घटनाएं Stress full events of life जैसे किसी प्रियजन को खोने के कारण
- नकारात्मक विचारों के बढ़ने के कारण Negative thoughts
- अस्वास्थ्यकर आदते Unhealthy life style जैसे पर्याप्त नींद ना लेना या खराब खान-पान की वजह
- ड्रग्स और अल्कोहल का दुरुपयोग Abusing drugs and alcohol

एक लंबी बीमारी के उपचार के बाद हमारे स्थूल शरीर में स्थित सूक्ष्म मन बहुत ही शक्तिशाली होता है। पर यह भी सत्य है कि यह शक्तिशाली मन, यह बलशाली मन अपने बल,

शक्ति और ताकत का सदुपयोग और दुरुपयोग दोनों कर सकता है। नियंत्रित मन, निर्मल मन अपनी शक्ति का सदुपयोग कर जीवन में सुख शांति और समृद्धि ला सकता है वही अनियंत्रित मन व्यक्ति के जीवन में तबाही और संकट लाता है। स्पष्ट है भौतिक और आध्यात्मिक समस्त उपलब्धियां मन के नियंत्रण पर निर्भर है। तभी तो वैदिक ऋषि “तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु” हेतु भगवद अभ्यर्थना करता है।[1]

भगवद्गीता के अनुसार मन के स्वरूप पर चर्चा की जाए उसके पहले कुछ अन्य विचाकों के मतों पर दृष्टिपात कर लेना उचित होगा। **आचार्य श्रीराम शर्मा का मंतव्य है**-‘ शरीर और आत्मा के बीच की चेतना मन है। मन को तीन भागों में बांटा जा सकता है- प्रवृत्त मानस- यह पशु-पक्षी आदि अविकसित जीवों तथा मनुष्यों में समान रूप में पाया जाता है। गुप्त मन और सुप्त मानस भी उसे कहते हैं। शरीर के स्वाभाविक जीवन बनाए रखना इसी के हाथ में है। भोजन की पाचन क्रिया, रक्त संचरण, मांस, मेदा, अस्थि, वीर्य का बनना, मलत्याग, श्वास-प्रश्वास आदि कार्य अपने आप होते रहते हैं। पिछले अनेक जन्मों के नीच स्वभाव जिन्हें प्रबल प्रयत्नों द्वारा काटा नहीं गया है, इसी विभाग में इकठ्ठे रहते हैं। इंद्रियों के भोग, घमंड क्रोध, भूख, प्यास, मैथुनेच्छा, निद्रा आदि प्रवृत्त मानस के रूप है। प्रवृत्त मानस के ऊपर दूसरा मन प्रबुद्ध मानस कहलाता है। इसका काम सोचना विचारना, विवेचन करना, तुलना करना, कल्पना, तर्क और निर्णय आदि करना है। इससे भी ऊपर का मन अध्यात्मिक मानस है’। इसका विकास अधिकांश लोगों में नहीं हुआ होता। उच्च भावनाएं मन के इसी विभाग में उत्पन्न होकर चेतना में गति करती है। प्रेम, सहानुभूति, करुणा, न्याय, धर्म प्रवृत्ति, सत्य, पवित्रता, आत्मीयता आदि सब भावनाएं इसी मन में आती है। ईश्वरीय भक्ति इसी मन में उदय होती है।[2]

यहां उल्लेखनीय है कि भगवद्गीता की रचना शताब्दियों पूर्व ऐसे कालखंड में की गई थी जब आज जैसे मानसिक रोग नहीं थे। अतः मानसिक रोगों का आज जैसा चिकित्सकीय समाधान भी गीता में नहीं है। परंतु यदि हम गहराई से विचार करे तो पाते है कि मानसिक बीमारियों के जिन प्रमुख कारणों का उल्लेख आलेख के पूर्व भाग में किया गया है वे वस्तुतः बीमारियों के कारण न होकर उनके बाइप्रोडक्ट है।जिन्हें कारण समझकर आज चिकित्साशास्त्र मानसिक स्वास्थ की गारंटी लेता है।परन्तु यदि यही सही निदान होता तो मानसिक रोग कब के समाप्त ही गये होते या उपचार के उपरान्त दुबारा न पैदा होते।भगवद्गीता मानसिक रोगों के बाइप्रोडक्ट या कारणों पर जोर नहीं देती बल्कि उस मर्म स्थान का भेदन करती है जहां से मानसिक रोग पैदा होते हैं। वस्तुतः समस्त मानसिक रोगों का कारण निरंतर विषयानुगामी, अनियंत्रित, चंचल और दुर्बल मन है।मन की चंचलता दूर होकर वह हृदय में निरूद्ध हो जाये और उसे परमात्मा का संबल प्राप्त हो जाये तो मन कभी रूग्ण हो ही नही सकता। इसी पृष्ठभूमि में हमे

सर्वप्रथम मन के स्वरुप पर चिंतन करना होगा गीताकार मन के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कहता है -

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥[3]

हे कृष्ण! यह मन बड़ा ही चंचल है ।इतना ही नहीं यह प्रमथनशील भी है। अर्थात शरीर को क्षुब्ध और इंद्रियों को विक्षिप्त यानी परवश कर देता है। किसी से भी वश में किया जाना अशक्य है साथ ही बड़ा दृढ़ भी है। जैसे वायु को रोकना दुष्कर है उससे भी अधिक दुष्कर मैं मन को रोकना मानता हूं ।भगवद्गीता में विभिन्न स्थलों में विविध प्रसंगों के माध्यम से गीता नायक कृष्ण ने मन को वश में करने उसे नियोजित और नियंत्रित दिशा में लगाने पर बल दिया है। वस्तुतः कामातुर अशांत मन ही समस्त मानसिक रोगों का मूल कारण है। कंचन कामिनी का लोभ ही सारी आपदाओं और चित्त की अशांति का मूल कारण है। कहा गया है – अशान्तस्य कुतः सुखं। अतः भोगेच्छाओँ पर नियंत्रण स्थापित करना मानसिक स्वास्थ्य की प्राथमिक और अनिवार्य शर्त है। तभी भगवन्नारायण अर्जुन से कहते हैं; हे महाबाहो! इस कामरूप दुर्जेय शत्रु का त्याग कर अर्थात जो दुःख से वश में किया जा सकता है उस अनेक दुर्वि ज्ञेय विशेषणों से युक्त काम का त्याग कर दे।

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्।।[4]

काम, क्रोध लोभ मोह के वशीभूत होकर मन निरंतर अधोगति को प्राप्त होता है अर्थात विवेकशून्य होकर काम, क्रोध, लोभ, मोह के वशीभूत कर्म करने से मन में दुर्बलता आती है परिणामस्वरुप चिंता और मनस्ताप पैदा होता है और यदि यह स्थिति दीर्घकाल तक अनवरत बनी रह गई तो मधुमेह, ब्लडप्रेशर और हार्ट अटैक जैसे बीमारियों का खतरा कई गुना बढ़ जाता है। सात्विक विचार से मन सबल होता है उसकी रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ जाती है। इसी कारण गीताकार ने काम, क्रोध, लोभ, मोह पर नियंत्रण को मानसिक स्वास्थ्य की प्राथमिक शर्त बताते हुए काम को नियंत्रित करने का उपदेश दिया है-

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेत्तत्रयं त्यजेत्।।[5]

तुलसीदास भी काम, क्रोध,लोभ, मोह को ही समस्त दुःखों का मूल मानते हैं-

काम क्रोध, मद, लोभ, सब नाथ नरक के पंथ।
सब परिहरि रघुबीरहि, भजहुँ भजहिं जेहि संत।[6]

अपने मन को अपने वश में रखने वाला व्यक्ति स्वयं से ही स्वयं का उद्धार करता है। विषयगामी मन अधोगति को प्राप्त होता है।

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः।
शीतोष्ण सुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः।।[7]

इंद्रियों पर संयम रखने वाला समबुद्धि वाला योगी मुझे ही प्राप्त होता है अर्थात परम कल्याण का भागी होता है-

सन्नियम्य इन्द्रिय-ग्रामं सर्वत्र सम-बुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्व-भूत-हिते रताः॥ [8]

चिंता और अवसाद ग्रस्त दुर्बल मन को इससे अधिक सहारा और क्या हो सकता है जब भगवान नारायण स्वयं कहते हैं- कि समाहित चित्त व्यक्ति को मैं बिना विलंब किए मृत्युसागर से पार कर देता हूं।

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नाचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्।।[9]

यहाँ उल्लेखनीय है कि सचेनता और अभ्यास के माध्यम से व्यक्ति अपने विचारों और भावनाओं पर नियंत्रण स्थापित कर सकता है परंतु मन का नियंत्रण दर्द निवारक गोली की तरह नहीं है कि गोली खाई और दर्द छूमंतर। इसके लिए निरंतर अभ्यास और साधना की आवश्यकता पड़ती है जिसे बौद्ध अनुशासन में सम्यक् व्यायाम और सम्यक् समाधि की संज्ञा दी गई है। कृष्ण ने मन की तुलना अशांत हवा से की है जिसे अनुशासन के माध्यम से नियंत्रित किया जा सकता है। क्रोध या हताशा के क्षणों में गहरी सांस लेने या ध्यान जैसी माइंडफुलनेस तकनीक का अभ्यास करने से आपको भावनाओं पर नियंत्रण पाने और अपेक्षाकृत अधिक तर्कसंगत निर्णय लेने में मदद मिल सकेगी। “विषयों में लगा हुआ चित्त उनके गुणों का चिंतन करता है फिर निरंतर चिंतन करने से उनकी कामना जागृत होती है और कामना से पुरुष की विषयों में प्रवृत्ति हो जाती है”।[10] मनुष्य का सच्चा स्वरूप क्या है? क्या वह भोग- वासनाओं की सिद्धि की तलाश में भटकता हुआ वन्य पशु है? दिन-रात कैरियर उत्थान की चिंता में डूबा हुआ अवसाद ग्रस्त जीव? भौतिक जीवन में सफलता या असफलता ही उसका परम पुरुषार्थ है या उसका स्वरूप आध्यात्मिक है जब तक हम इस प्रश्न का यथेष्ठ समाधान नहीं निकाल लेते, जीवन में कभी सुख शांति नहीं मिल सकती। अशांति एवं अतृप्ति की आग में सुलगता हुआ जीव नाना विध मानसिक व्याधियों से घिर जाता है। गीता में हमें बताती है कि हम केवल अपने भौतिक शरीर ही नहीं बल्कि इन शरीरों में अस्थाई रूप से निवास करने वाली दिव्य आत्माएं हैं। इस अंतर को पहचानने से व्यक्तियों को भौतिक दुनिया से जुड़ी चिताओं से अलग होने में मदद मिलती है। कार्यस्थल पर किसी कठिन परिस्थिति का सामना करते समय यह समझना है कि अपना सच्चा व्यक्तित्व अपनी नौकरी के शीर्षक से परिभाषित नहीं होता, पेशेवर चुनौतियों से जुड़े तनाव और चिंता को कम कर सकता है।

भोगपदार्थों के प्रति अत्यधिक आसक्ति, उपलब्ध भौतिक संपदाओं की समाप्ति के भय का भाव मन को चिंतित किए रहता हैं। वस्तुतः जो शोक या चिंता का विषय नहीं है उस पर भी हम शोक करते हैं परिणामतः मन दुर्बल होता चला जाता है। जिसका सीधा नकारात्मक प्रभाव शरीर पर पड़ता है। शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता में निरंतर ह्रास होता जाता है। यह देह और भौतिक उपलब्धियां क्षणिक और नाशवान है। इनके प्रति ममता और आसक्ति से मन दुःखी होता है। और दुःखी मन व्याधियों का घर होता है।

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत॥ [11]
अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम्।
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि।[12]
मोक्षस्य कांक्षा यदि वै तवास्ति
त्यजातिदूरद्विषयान्विषं यथा।
पीयूषवत्तोषदयाक्षमार्जव
प्रशान्तिदान्तीर्भज नित्यमादरात्।।[13]

युक्ताहार विहार मानसिक स्वास्थ्य की प्रागप्रेक्षा हैं। निरंतर भागमभाग की इस जिंदगी में मनुष्य को स्वयं अपने के लिए समय नहीं है। परिणामतः शरीर और मन दोनों रोग ग्रस्त है और क्षीण होते जा रहे हैं। परंतु आज सबसे अधिक उपेक्षा आहार विज्ञान को लेकर ही है। गरीब कुपोषण का शिकार है तो सक्षम और सम्पन्न व्यक्ति स्वाद के वशीभूत हो जिव्हा के गुलाम है। गीता हमें सावधान करती हुई निर्दिष्ट करती है। जिसका सोना और जगना नियत काल में यथायोग्य होता है ऐसे योगी का दुःखनाशक योग सिद्ध हो जाता है।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु। युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।[14]

योग साधक का आहार विहार उचित होना चाहिए। उसकी सारी क्रियायें यथा योग्य होनी चाहिए। जो साधक इन बातों का पालन करता है उसके लिए योग मार्ग दुःखनाशक होता है।

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः। न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन।।[15]

परंतु देर से खाना, देर से सोना और देर से जागना आधुनिक जीवन शैली का हिस्सा बन गया है। इस रूग्ण जीवन शैली का मानसिक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल असर पड़ता है। श्रीमद्भागवत गीता आहार शास्त्र का महानतम ग्रंथ है। गीता में राजसिक और तामसिक आहार को वर्ज्य करते हुए सात्विक आहार को अधिमान्यता प्रदान की गई है।

आयु:सत्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धना:।
रस्या: स्निग्धा: स्थिरा हृदयाआहारा: सात्विक प्रिया:॥[16]

राजसिक और तामसिक आहार का निषेध करते हुए गीता समस्त प्रकार के मद्यपान और धूम्रपान के त्याग का निर्देश देकर शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को संरक्षण और संवर्धन प्रदान करती है। कैरियर का विनिश्चय और अभीष्ट लक्ष्य प्राप्त न होने पर उत्पन्न संवेग, विषाद और अवसाद से निपट पाना आज युवा मानस की सबसे बड़ी समस्या है। लक्ष्य भ्रष्टता या असफलता जन्य मानसिक अवसाद कदाचित आत्महत्या का कारण भी बन जाता है। ऐसे में गीता का उपदेश एक लाइफ मैनेजमेंट गुरु के रूप में, कैरियर काउंसलर के रूप में किंकर्तव्यविमूढ़ युवाओं का पथ प्रदर्शन करती है। अपने गुण, स्वभाव और क्षमता के अनुसार ही कैरियर का चुनाव करना चाहिए। यही तो स्वधर्म है। अपने मन का स्वास्थ्य बनाए रखने के लिए आप को अपने स्वभाव का पता लगाना होगा और उसके अनुरूप कार्य करना होगा। गीता कहती है अपने निर्धारित कर्तव्य का पालन करना भले ही त्रुटि पूर्ण हो दूसरो के कर्तव्य को पूरी तरह से निभाने की तुलना में बेहतर है। अपनी विशिष्टताओं को पहचाने और उसे विकसित होने का अवसर दें। सूक्ष्मता ही आपको अद्वितीय बनती है।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्। स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥ [17]

विषय भोगों के प्रति आकर्षण और संबंधित फलासक्ति ही समस्त दुःखों का मूल कारण है। अज्ञानता के कारण हम स्वयं को ही समस्त कर्मों का कर्ता मान लेते हैं परिणामस्वरुप कर्म में सफलता प्राप्त हो जाने पर हमारे अंदर अहंकार पैदा होता है। अहंकार पार्थक्य भाव का कारण होता है परिणामतः हम प्रकृति, समाज और परासत्ता से अलग-थलग पड़ जाते हैं और संबंधित कार्य में असफलता प्राप्त होने पर मानसिक अवसाद की स्थिति प्राप्त होती है। अनासक्ति योग के उपदेश द्वारा जगन्नियंता जनार्दन मानव जाति को मानसिक दुःखों- हताशा, कुंठा दुश्चिंता और अवसाद से मुक्त हो जाने का सहज उपाय बताते हैं। कर्तापन का भाव तो जीव की अज्ञानता है। वस्तुतः समस्त कर्म प्रकृति और उसकी शक्तियों द्वारा ही संपादित होते हैं।

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः। अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताऽहमिति मन्यते।।[18]
मयाऽध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्। हेतुनाऽनेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते।।[19]

निष्काम कर्म की यह अवधारणा व्यक्तियों को पुरस्कार या मान्यता की अपेक्षा के बिना निःस्वार्थ भाव से कार्य करने के लिए प्रेरित करती है। बाहरी सत्यापन की आवश्यकता को छोड़कर व्यक्ति मानसिक मुक्ति की गहन अनुभूति का अनुभव कर सकता है। दैनिक जीवन में निष्काम कर्म को लागू करने से आपको परिणाम के बारे में तनाव के बजाय उद्देश्य की भावना के साथ कार्यों को करने में मदद मिल सकती है। जिससे व्यक्ति दुश्चिंता और अवसाद की गिरफ्त से बच जाता है। केवल इतना ही नहीं निष्काम भाव विपरीत से विपरीत एवं कठिन से कठिन परिस्थिति में हमें कर्तव्य पथ पर निरंतर बढ़ते रहने की शक्ति भी देता है। निष्काम भाव की द्वितीय

अवस्था में हम कार्य की सफलता- असफलता को परसत्ता को समर्पित कर स्वयं निमित्त मात्र बन जाते हैं। परसत्ता की अहेतुकी कृपा से जीवन में परिव्याप्त अवसाद रूपी कुहासा छट जाता है। इसी भगवद कृपा की तरफ इशारा करते हुए गोस्वामी कहते हैं-

प्रबिसि नगर कीजे सब काजा। हृदयँ राखि कोसलपुर राजा॥ [20]

विषाद की मनोदशा शारीरिक प्रतिरक्षा प्रणाली को प्रभावित करती है। ऐसी दशा में यदि रोगी की मनोदशा विधेयात्मक दृष्टिकोण अपना लेती है तो शरीर की प्रतिरक्षात्मक प्रणाली विकसित होने लगती है। यदि दृष्टिकोण सकारात्मक हो तो मनुष्य न केवल बीमारी को परास्त कर सकता है वरन् एक सुखी जीवन भी जी सकता है। जब हृदय का बल और मन का संकल्प एक दिशा में लगते हैं तो हर काम अच्छी तरह से पूरा हो सकता है। संकल्प शक्ति से ही व्यक्ति, राष्ट्र, जाति और संस्कृति अजेय बनते है।एकोहं बहुस्याम: के परमात्म संकल्प से ही जगत की सृष्टि हुई है। संकल्प इंसान को अपार उत्साह और अदम्य साहस से भर देता है। अहंकार शून्य शुभ संकल्प युक्त प्रभु पदाम्बुजों में समर्पित मन ही विकसित मन कहलाता है। जरूरत है मन को विकसित करने की।उसकी इम्यूनिटी (रोगप्रतिरोधक क्षमता) को बढ़ाने की ताकि किसी भी कठिन या दुःखद परिस्थिति में वह टूट कर गिरे नहीं और मजबूती के साथ फिर संभल जाए और दूसरों का भी सहारा बने। योगी अरविंद कहते हैं “Everything is possible if God touch is there.” इस दुनिया में सब कुछ संभव है यदि भगवान की कृपा है। जब हम गीता के शब्दों में कहते हैं- सदा तद्भाव भविता को हम बार-बार स्वयं को याद दिलाते हैं कि हमारे अंदर उन्हीं का अंश है। परमात्मा सदैव साथ है जैसे ही यह भाव दृढ़ होता है मन सभी प्रकार के अर्थों एवं अनिष्ट की आशंका से शून्य हो जाता है। ऐसे मन की इम्युनिटी पावर दुर्निवारणीय होती है। फिर स्वयं भगवान नारायण घोषणा करते हैं –“योगक्षेमं वहाम्यहं”। भक्तों के योगक्षेम का संचालन मैं स्वयं करता हूं। ऐसे निष्कलुष, निष्पाप जीवात्मा की कभी दुर्गति नहीं होती। प्रभु समर्पित भक्त की सतत रक्षा का प्रमाण देते हुए स्वयं सृष्टि नियंता कहते हैं- न मे भक्तः प्रणश्यति मेरे भक्तों का कभी विनाश नहीं हो सकता। सांसारिक झंझावातों एवं असफलताओं के सतत थपेडों से टूट चुके मन को आवश्यकता होती है परम शक्ति के संबल की। जिस दिन,जिस क्षण हमें एहसास हो जायेगा कि प्रभु हमारे साथ है, नेत्रों के समक्ष छाया हुआ निराशा का कुहासा स्वयंमेव छंट जायेगा। साररूपेने कहा जा सकता है कि व्यक्तिगत या व्यावसायिक उथल-पुथल के समय में गीता के ज्ञान को अपनाने से संयम बनाए रखने और आंतरिक शक्ति पाने में मदद मिल सकती है जिससे ऐसे निर्णय लेने में हम सक्षम है। हो सकते हैं जो हमारे सच्चे स्व के अनुरूप है। वास्तव में भगवद्गीता गीतानायक कृष्ण की शिक्षाओं के साथ मानसिक स्वास्थ्य के प्रबंधन में गहन अंतर्दृष्टि प्रदान करती है। स्वयं की प्रकृति को समझकर, विकसित करके, ज्ञान की खोज करके जीवन की

चुनौतियों को अनुग्रह और लचीलेपन के साथ पार कर सकते हैं। जैसे ही इन शिक्षाओं को हम अपने जीवन में अपनाते हैं। हम सदियों से गीता के शाश्वत ज्ञान को दोहराते हैं, सांत्वना और मानसिक कल्याण पा सकते हैं।

निष्कर्ष :-

मानसिक स्वास्थ्य में हमारे भावनात्मक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक कल्याण शामिल है। यह प्रभावित करता है कि हम कैसे सोचते हैं ,महसूस करते हैं और कार्य करते हैं। हमारे स्थूल शरीर में स्थित सूक्ष्म मन बहुत ही शक्तिशाली है। परंतु यह अपनी शक्ति का दुरुपयोग और सदुपयोग दोनों कर सकता है। मन की शक्तियों का सकारात्मक प्रयोग करके मनुष्य नर से नारायण की उपलब्धि कर सकता है। मन की शक्तियों का दुरुपयोग उसे मानव से दानव बनाने में क्षणमात्र भी समय नहीं लेता हैं। मानसिक रोगों का कारण निरंतर विषयानुगामी, अनियंत्रित, चंचल और दुर्बल मन है। भोगेच्छाओं पर नियंत्रण स्थापित करना मानसिक स्वास्थ्य की अनिवार्य और प्राथमिक शर्त है। भोगेच्छाओं पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए मन की चंचलता पर लगाम लगाना होगा। सचेतनता और अभ्यास के कठोर अनुशासन द्वारा चंचल मन की गति को निरुद्ध किया जा सकता है। इसी दिशा में आवश्यकता इस बात की है कि हमें अपने दिव्य स्वरूप पर जिस पर अज्ञानता का मोटा पर्दा पड़ा है, निरंतर चिंतन करने की आवश्यकता है। आचार्य विनोबा भावे के इस मंत्र को हमें जीवन की प्रत्येक श्वास और प्रत्येक पदचाप में उतारने की आवश्यकता है "ब्रह्म सत्यं जगत स्फूर्ति: जीवनं सत्यशोधनम" हमें अपने ब्राह्मी स्वरूप का जितना ही अभिज्ञान होता जाता है जीवन की समस्त उपलब्धियां और अनुपलब्धियाँ उसके सक्षम बौने होते चले जाते हैं। लाभ -हानि, जय- पराजय, निंदा- प्रशंसा के दृश्य हमें चिंतित नहीं करते हैं प्रभावित नहीं करते हैं। परिणामस्वरूप मन कभी अवसाद ग्रस्त नहीं होता। काम, क्रोध, लोभ, मोह के सांकल में जकड़े हुए मन को इससे मुक्त करके आत्मोद्धार करना होगा। अन्यथा विषयानुगामी मन नाना व्याधियों से फिर घिर जाएगा। मन का एक स्याह पक्ष यह भी है कि जो शोक या चिंता का विषय नहीं है,हम उस पर भी शोक करते हैं परिणामतः मन दुर्बल होता चला जाता है। यह शरीर और सांसारिक भोग पदार्थ क्षणिक और नाशवान है। यह अनात्म भी है। यह भाव हमें अपनी चेतना में प्रतिक्षण जागृत रखना होगा। साथ ही युक्ताहार विहार मानसिक स्वास्थ्य की प्रागपेक्षा है। गीता में राजसिक और तामसिक आहार को वर्ज्य करते हुए सात्विक आहार को अधि मान्यता दी गई है। इससे स्वस्थ शरीर और सबल मन दोनों की प्राप्ति होती है। स्वधर्म (गुण और स्वभाव) के अनुसार अपने कैरियर का चयन और उसकी सर्वथा उपलब्धि हेतु प्राणोत्सर्ग के लिए भी तैयार रहना मन को ढेर सारे भटकाओं, दुश्चिंताओं और परेशानियों से मुक्त कर देता है। दैनिक जीवन में निष्काम भाव से काम करने से व्यक्ति जहां एक तरफ परिणाम के तनावजन्य दुश्चिंता से मुक्त रहता है वही

भगवद समपर्ण की भावना से उसे कर्तव्य पथ पर आगे बढ़ने की आध्यात्मिक शक्ति भी प्राप्त होती है। परात्पर सत्ता की अहेतुकी कृपा के प्रभाव से जीव के जीवन में परिव्याप्त अवसाद रूपी कुहासा छंट जाता है। परमात्मा सदैव मेरे साथ है जैसे-जैसे यह भाव दृढ़ता होता जाता है मन सभी प्रकार के अनिष्ट एवं भय की आशंका से मुक्त हो जाता है। ऐसे मन की रोग प्रतिरोधक क्षमता सामान्य जन से कई गुना अधिक होती है। निश्चित रूप से गीतोक्त उपदेश सबल मन एवं मानसिक स्वास्थ्य संवर्धन हेतु संजीवनी बूटी के सदृश हैं। देखना है भोगवाद और जड़वाद के व्यामोह में उलझी हुई मानवता गीता के दर्शन के इस खाद -पानी का उपयोग कर पाती है या नहीं।

सन्दर्भसूची :-

1. पाण्डेय (डॉ) गीतांजलि,(2016)वेद सूक्त मंजरी शिव संकल्प सूक्तम संहिता पाठ 1, साहित्य संगम इलाहाबाद।
2. आचार्य शर्मा श्री राम (2010) मैं क्या हूं, प्रकाशक- युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट गायत्री तपोभूमि मथुरा।
3. श्रीमद्भगवतगीता6/34 (शांकर भाष्य) अनुवादक श्री हरि कृष्ण दास गोयन्दका गीताप्रेस गोरखपुर।
4. वही, 3/43
5. वही 16/ 21
6. तुलसीदास, रामचरितमानस सुंदरकांड दोहा 38 गीताप्रेस गोरखपुर।
7. श्रीमद्भगवत गीता 6/7 (शांकर भाष्य) गीताप्रेस,गोरखपुर उत्तरप्रदेश।
8. वही 12/4
9. वही 12/7
10. शंकराचार्य, विवेक चूड़ामणि (संवत 2052) श्लोक संख्या 327 गीताप्रेस गोरखपुर।
11. श्रीमद् भगवत गीता (शांकर भाष्य) 2/18 गीता प्रेस गोरखपुर।
12. वहीं 2/26
13. शंकराचार्य, विवेक चूड़ामणि (संवत 2052) श्लोक 84 गीताप्रेस गोरखपुर।
14. श्रीमद् भगवत गीता (शांकर भाष्य) 6/17 गीताप्रेस गोरखपुर।
15. वही 6/ 16
16. वही 17 /18
17. वही 3/35
18. वही 3/ 27
19. वही 9/10
20. श्री रामचरितमानस (सं.2052) तुलसीदास सुंदरकांड 4/1 गीताप्रेस गोरखपुर, उत्तरप्रदेश।

---

*आचार्य एवं अध्यक्ष, योग विभाग, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म.प्र.)।